दीर्घावधि में है नुकसान

पार्थ जे शाह
अध्यक्ष, सेंटर फॉर सिविल सोसायटी

सरकार में आरक्षण और शिक्षण संस्थाओं, नौकरी में आरक्षण दो अलग-अलग मुद्दे हैं। पंचायत में अथवा संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए जो आरक्षण दिया गया है तथा इस दिशा में जो प्रयास किए जा रहे हैं वो उचित हैं। वह इसलिए कि सरकार का तो काम ही होता है कि वह लोगों का प्रतिनिधत्व करे। इसलिए प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए अगर लिंग, समुदाय या क्षेत्र आधारित आरक्षण दिया जाता है तो उसे गलत नहीं कहा जा सकता। पर यही बात नौकरी या शिक्षण संस्थाओं में दिए जाने वाले आरक्षण के बारे में नहीं कही जा सकती।

इंजीनियरिंग या मेडिकल आदि उच्च शिक्षण संस्थाओं तथा नौकरी में चयन का आधार खुली प्रतिस्पर्धा

अनुभव कहता है कि आरक्षण के बजाय समाज के वंचित वर्ग को आगे बढ़ाने के लिए उन्हें मदद के कार्यों के माध्यम से सक्षम बनाने की पहल की जाए।

में समान मानकों पर प्रदर्शन होता है। इसके अलावा और किसी भी आधार पर अगर यहां चयन किया जाएगा तो उसका प्रदर्शन और कार्यकुशलता पर विपरीत असर तो पड़ेगा। शुरू में जरूर ऐसा लग सकता है कि कुछ वंचित समुदायों को आगे बढ़ाने में हमने सफलता हासिल की है, पर दीर्घावधि में तो इसके दुष्परिणाम ही होते हैं। इससे समाज बंटता है तथा सामाजिक विभाजन और मजबूत होते हैं। भारत में आरक्षण व्यवस्था की जो भी थोड़ी बहुत समीक्षा हुई है, उसके निष्कर्ष यही हैं। वर्तमान आरक्षण व्यवस्था के दुष्परिणाम समझने के लिए हमें कुछ साल पीछे जाना होगा।

इंजीनियरिंग और मेडिकल कॉलेजों में 2006 के दौरान 'यूथ फॉर इक्विलिटी' के बैनर तले कई माह तक चले आंदोलन को याद कर सकते हैं जिसमें कई छात्रों ने आत्मदाह भी किया था। जिसके बाद इस संगठन ने कई शिक्षण संस्थाओं में चुनाव भी लड़ा था।

यह नहीं भूलना चाहिए कि आरक्षण व्यवस्था का उद्देश्य जाति पर जोर देना नहीं, जाति को खत्म करना था। इसके विपरीत आज जिस तरह से कभी जाट तो कभी किसी अन्य समुदाय को राजनीतिक हानि-लाभ को ध्यान में रखकर आरक्षण दिया जा रहा है उसमें सिर्फ जाति विशेष को प्रतिनिधित्व दिये जाने की बात की जाती है। योग्यता और कार्यकुशलता को पूरी तरह ताक पर रख दिया गया है।

पढ़ें दीर्घावधि @ पेज 12

पत्रिका Sun, 22 March 2015
epaper.patrika.com/c/4802969

दीर्घावधि में हैं नुकसान ...

जिसने समुदायों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ाकर सामाजिक एकता को भी चोट पहुंचाई है। अमरीका आदि देशों में भी 'विविधता' को बढ़ावा देने की नीति बनाकर 'अफरमेटिव एक्शन' के तहत अश्वेत लोगों को नौकरी तथा विशेष रूप से सरकारी ठेकों आदि में प्राथमिकता दी गई थी, वहां भी उसके दूरगामी नकारात्मक असर को देखकर अब उन सबको धीरे- धीरे कम किया जा रहा है।

आज तक का अनुभव तो यही कहता है कि नौकरियों अथवा दाखिले में किसी तरह के आरक्षण के बजाय समाज के वंचित वर्ग को आगे बढ़ाने के लिए उन्हें समर्थनकारी कार्यों के माध्यम से सक्षम बनाने की पहल की जानी चाहिए। उन्हें बेहतर कोचिंग जाने के लिए पैसे दें। किताबें दें। छात्रावास की सुविधाएं दें। अन्य कोई भी समर्थनकारी सहायता - वह सांस्कृतिक -सामाजिक पूंजी के रूप में हो अथवा आर्थिक पूंजी के रूप में हो, दी जा सकती है। पर प्रवेश और नौकरी के लिए तो खुली प्रतिस्पर्धा ही पैमाना होना चाहिए। कई बार सरकारी ठेकों में कुछ समुदायों के लिए आरक्षण की बात भी की जाती है। इसे भी उचित नहीं कहा जा सकता। इसके बजाय यह हो सकता है कुछ समुदायों के लिए ठेके की राशि में 10 या 15 प्रतिशत की रियायत दी जा सकती है, जिससे उन पर आर्थिक बोझ कम आए। पर ठेके की नीलामी तो खुली प्रतिस्पर्धा से ही होना चाहिए। दीर्घावधि में समाज की एकता और कुशलता दोनों के लिए यही बेहतर है।